National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040
Impact Factor: RJIF 5.22
www.nationaljournals.com
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 641-645

'राज्य' का स्वरूप

डॉ० विजय शंकर मिश्र
हिन्दी विभाग, सत्यवती कॉलेज (सांध्य), नई दिल्ली, भारत।

प्रस्तावना

जायसी ने पदमावत में चित्तौड़, सिंहलद्वीप और दिल्ली राज्यों का बड़े मनोयोग से वर्णन–चित्रण किया है। चित्तौड़ और दिल्ली ऐतिहासिक नगर हैं। सिंहलद्वीप महाकवि की कल्पना से प्रसूत है। प्रोफेसर विजयदेव नारायण साही ने सिंहलद्वीप के लिए 'अलोक' शब्द का प्रयोग किया है। उनके अनुसार 'अलोक' को 'आदर्श लोक' का पर्याय अथवा समानार्थी नहीं मानना चाहिए। साही जी के मत में इस लोक की कल्पना में नई बात यह है कि जायसी ने आन्तरिकता की छवियों को पहचानने के बाद इसे बरबस इतिहास के बीचों–बीच खड़ा कर दिया।[1] वे भाँति–भाँति के पक्षियों द्वारा एक ही परमात्मा का नाम लेने, कालहीनता में स्थित उदग्र गतिमयता, समस्त प्रचलित साधनाओं के साधकों की उपस्थिति आदि–आदि के आधार पर सिंहल का मूल्यांकन करते हैं। उनके अनुसार सिंहलद्वीप की ऊपरी आंतरिकता उसकी व्यावहारिक समरसता का प्रमाण है।

मेरे विनम्र मत में चित्तौड़ और दिल्ली भारतीय इतिहास के तथ्य–सत्य हैं। इनके चित्रण में स्वप्नमयता एक निश्चित रूप तक ही समाविष्ट की जा सकती है। इसके विपरीत सिंहलद्वीप इच्छान्वित अनुभूति से उद्भूत काल्पनिक राज्य है। उसके वर्णन में वास्तविकता आनुपातिक रूप में बहुत कम मात्रा में है। ऐसा होते हुए भी अपने मूलभूत चरित्र में तीनों राज्यों का चरित्र समान है।

सिंहलद्वीप जीवन के प्रति संबोधित होते ही चित्तौड़ और दिल्ली से अभिन्न हो जाता है। स्वप्निल कल्पनाएँ हमेशा के लिए कर्म एवं यथार्थ से पराङ्मुख नहीं हो सकतीं– ठीक उसी तरह जैसे कटुतम् यथार्थ भी सदैव ही स्वप्निल कल्पनाओं की उपेक्षा नहीं करे रह सकता। सुख–उल्लास–आनंद, समर्थता वैभव, प्रताप आदि की शाश्वत उपस्थिति अनादि काल से मनुष्य का मदिर स्वप्न है। स्वर्ग या हैवेन या जन्नत की कल्पना इसी स्वप्न का परिणाम है। सिंहल भी एक ऐसी ही कल्पना है, लेकिन ज़मीनी ज़िन्दगी के गतिशील होते ही उसमें और दिल्ली–चित्तौड़ में एकात्म स्थापित हो जाता है। महाकवि का विचारवाद तीनों राज्यों के विवरणों में बड़ी स्पष्टता के साथ प्रकट हुआ है। ऊपरी सतह पर तीनों में चित्रित स्थितियाँ पर्याप्त सुखद–सुरम्य हैं, लेकिन आंतरिकता में उनमें स्वाभाविक रूप से राजशाही व्यवस्था में निहित घोर व्यक्तिवादी निरंकुशता–स्वेच्छाचारिता–आभिजात्यता–हिंसा है। यथास्थितिवादी ऐतिहासिक शक्तियों द्वारा स्थापित व्यवस्थाओं की विसंगतियाँ तीनों राज्यों में प्रायः एक–जैसी हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी व्यवस्थाएँ जायसी द्वारा समर्थित है। कतिपय संदर्भों में यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है।

सिंहलद्वीप पद्मिनियों का चिरंतन अप्रतिम लोक है। इसकी पनिहारिने बहुत सुंदर है। उनकी संख्या पर्याप्त है। वे समूह में चलती हैं। कवि ने इन्हें भी 'पदुमिनी' जाति का बतलाया है। थोड़ा आगे चलकर वे इसी जाति की सोलह सहस्र 'रानियों' का उल्लेख करते हैं।[2] रानियाँ अनिवार्यतया पनिहारिनों से बहुत अधिक रूपवान हैं। ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि पनिहारिनें पद्मिनी जाति की किञ्चित नेष्ठ उपजातियों से संबंधित होंगी। सोलह हज़ार 'रानियाँ' उच्च उपजाति की हैं। इनसे भी ऊपर की स्थिति चंपावती की है। वह अद्भुत रूप की स्वामिनी है। इसीलिए पट्टमहिषी है। सृष्टि के महतोमहीयान सौन्दर्य को इसी ने जन्म दिया। पद्मावती के रूप में अलौकिक रूप इसी पट्टमहिषी चंपावती की कुक्षि में अवतरित हुआ।[3] जायसी के निर्णयानुसार पनिहारिने 'रानियों' से और रानियाँ 'महारानी' से अधिक सुंदर नहीं हो सकती। वे प्रश्न करते हैं कि जिस राज्य की पनिहारिनें या दासियाँ 'काममूर्ति' और अप्सराओं सदृश रूपवान हैं, वहाँ की रानियों की अद्भुत रमणीयता की कल्पना कैसे की जा सकती है। सौन्दर्य को शास्त्रीय वर्गों में बद्ध करके देखने की दृष्टि जातिवादी समाज–बोध से उपजी है। यह 'जिज्ञासा' आन्तरिकता की किसी छवि से संबंधित नहीं हो कर सर्वोत्तमतावादी विचारवाद का प्रतिफलन है। यह महाकवि का इतिहास बोध है।[4]

जायसी एकदम प्रारंभ से ही स्पष्ट कर देते हैं कि सिंहलद्वीप पूरे विश्व का अद्वितीय स्थान है। इसकी तुलना में अन्य कोई राज्य नहीं ठहरता। इस द्वीप के रूप में उनकी कल्पना की समता का प्रश्न ही नहीं उठता। प्रश्न उठता है कि इस अनुपमेयता का आधारभूत कारण क्या है? कवि ने इसका उत्तर देते हुए कहा है कि अप्रतिमता का प्रधान कारण पद्मिनी स्त्रियों का रूप और पद्मावती की सृष्टि ऊपर शोभा है।[5]

रत्नसेन और अलाउद्दीन का उन्मादित आकर्षण नाम–रूप–गुणात्मक मानुषी के प्रति नहीं हो कर स्त्रियों की शास्त्रनिर्धारित सर्वोच्च जाति की शिरोमणि के उत्तेजकतम् शरीर के प्रति है। उनके मन में तथाकथित प्रेमोद्भव एवं प्राप्ति–प्रयत्नों का बुनियादी कारण यही है। नागमती जंबु द्वीप की अद्वितीय सुंदरी होते हुए भी शारीरिक सौन्दर्य की दृष्टि से सिंहलद्वीप की पद्मिनियों की अधिष्ठात्री देवी पदमावती के समक्ष नहीं ठहर सकती थी। जायसी ने अपनी यह मान्यता 'सत्य' के रूप में कथा में सप्रयत्न आरोपित की है। इसीलिए उनकी कथा–योजना में रत्नसेन और अलाउद्दीन 'प्रेमसाधक' हैं, एकांत रूपलोभी और कामुक नहीं। महाकवि के विद्वान् पण्डित हीरामन ने अपने सर्जक का समर्थन पा कर ही अत्यन्त उद्दण्डतापूर्वक पदमावती के समक्ष नागमती के रूप को हीन–नगण्य सिद्ध किया है।[6]

उधर राघव चेतन ने भी अलाउद्दीन की इस भ्रामक धारणा का सफलतापूर्वक खण्डन किया कि उसके हरम में पद्मिनी जाति की स्त्रियाँ है।[7]

नख–शिख खण्ड, पद्मावती रूप चर्चा खण्ड और विशेषकर स्त्री–भेद–वर्णन की योजना का उद्देश्य पद्मिनी जाति की रमणियों की सर्वश्रेष्ठता का प्रतिपादन है। इसीलिए दोनों नख–शिख वर्णनों में किसी तरह का वास्तविक अंतर नहीं है। सिंहललोक स्त्रियों के मूल्यांकन के क्षणों में उन्हें संपूर्ण व्यक्तित्व अर्थात् जीवंत इकाई के

स्थान पर केवल मात्र 'शरीर' अथवा 'वस्तु' मानने की बीमार मानसिकता से आक्रान्त है। उसकी सोच के केन्द्र में मानुषी नहीं है।

भाषा के संदर्भ में भी यही समझ दर्शित होती है। संस्कृत सिंहललोक की महिमा के उपयुक्त भाषा है। लोकभाषाओं का व्यवहार उसे सामान्य राज्यों की श्रेणी में ला कर साधारण बना सकता था। इससे उसकी गरिमा में खरोंच लग सकती थी। इसीलिए अपनी उदात्तता के अनुरूप सिंहलवासियों का समस्त संवाद देववाणी संस्कृत में ही होता है– ''संसकिरत सबके मुख बाता।''[8] यह भी जायसी का इतिहास–बोध है। भारतीय, बल्कि संभवतया विश्व इतिहास में सामंती और लोकभाषाओं का आपसी संघर्ष बहुत पुराना है। इसमें कोई संदेह नहीं कि साहित्य, दर्शन, ज्ञान–विज्ञान की दृष्टि से संस्कृत विश्व की महानतम् भाषा है और यह संभावना भी पूरी–पूरी है कि वह भी किसी या किन्हीं समयों में लोकभाषा रही हो। लेकिन ज्ञात–कलमबंद इतिहास में, मानेकि पिछले लगभग ढ़ाई हज़ार सालों के इतिहास में क्रमशः पालि, प्राकृत, अपभ्रंश के उद्भव एवं विकास के साथ संस्कृत लोकव्यवहार में प्रयुक्त होने वाली भाषा नहीं हो कर बुद्धिजीवी समूह और आभिजात्य वर्गों तक सीमित हो गई। इसमें भी कोई संदेह नहीं कि उसे व्यापक जनसमूहों पर उस तरह कभी बलात् थोपा भी नहीं गया, जैसेकि स्वतंत्र भारत में विदेशी अंग्रेजी भाषा को छोटे सुविधाभोगी समूहों द्वारा व्यापक समाजों पर आरोपित करने के प्रयास किए गए। भाषा संस्कृति की वाहिका है। जैसी संस्कृति होगी, वैसी ही भाषा भी होगी। विसंगतियों–विषमताओं से ग्रस्त शोषित समाजों में प्रभु–वर्गों और शासित समाजों की भाषा एक–समान नहीं होती। वह पृथक–पृथक होती है। इसका मूलभूत कारण उनकी जीवन–शैलियों की पृथकता है, जीवन–संस्कृतियों की पृथकता है। आधुनिक भारत के असाधारण मनीषी चिंतक नेता डॉ. राम मनोहर लोहिया ने भाषा के प्रश्न को सीधे–सीधे रोजी–रोटी और विशेषाधिकारों से जोड़ा था।

लोकभाषाओं को हाशिए में रख कर सुविधाभोगी समाजों या विशेषाधिकारवादी मण्डलियों या शासक–गिरोहों या आभिजात्य समूहों की भाषा को प्रशासन–शिक्षा–विधि–नौकरियों आदि की भाषा बनाने पर बहुसंख्यक समाजों के लिए 'अवसर' अत्यधिक संकुचित हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में 'विषय' का ज्ञान महत्त्वहीन और थोपी गई भाषा की जानकारी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। स्वतंत्र भारतवर्ष में अंग्रेज़ी के ना या कम जानकार व्यक्ति के लिए अवसर भयावह रूप में सीमित हो जाते हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि डॉ. लोहिया से पहले स्वामी दयानन्द सरस्वती और महात्मा गाँधी तथा बाद में इन्दिरा गाँधी और अटलबिहारी वाजपेयी तक ने हिन्दी तथा देशी भाषाओं को प्रमुखता देने पर जोर दिया। महाकवि जायसी के सिंहललोक की भाषा कोई लोकभाषा नहीं है। इसकी कथा तेरह सौ ईस्वी के आसपास की है। तब संस्कृत देश के किसी प्रदेश की लोकभाषा नहीं थी। ऐसे में सिंहलद्वीप में सामान्य लोकव्यवहार में देववाणी के प्रयोग की कल्पना का लक्ष्य उस लोक को सर्वोच्च स्थान प्रदान करना मात्र है। यह स्थान सर्वश्रेष्ठतावादी विचारधारा की पौराणिकता से अनुप्राणित काल्पनिक परिणति है। यह अपनी आंतरिकता में अनेक परती नहीं हो कर इकहरी–एकरूप–स्थूल है क्योंकि यह सौभाग्य के शिखर पर आसीन महाप्रभुओं का समाज है।

उक्त तर्क सिंहलद्वीप में पाखण्डी, धूर्त्त, चोरों तथा वेश्यालयों की उपस्थिति पर भी लागू होता है। इस लोक की घटना–तरंगों में वैश्विक समरसता के दर्शन के क्षणों में आलोचक इनकी उपस्थितियों को महाकवि के यथार्थ–बोध का प्रमाण मानकर उल्लसित हो सकते हैं।, लेकिन बुनियादी प्रश्नों का उत्तर ऐसी उल्लसित अवस्था को कुण्ठित कर देता है। यह तथ्य महत्त्वपूर्ण नहीं है कि सिंहलद्वीप में वेश्याओं का बाज़ार है। ये बाज़ार प्रायः प्रत्येक बड़े शहर में, बहुधा उसके दिल में विद्यमान होते हैं। इसलिए यहाँ उद्देश्य उनकी विडंबनात्मक उपस्थिति पर विचार करना नहीं है। उद्देश्य महाकवि जायसी की नैतिकताओं से परिचित होना है। श्रृंगारहाट की तटस्थ–निर्लिप्त विद्यमानता की सूचना सर्जक कलाकार के सामाजिक यथार्थ से परिचय की सूचक होती। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। जिस प्रकार पनिहारिनों–रानियों–पद्मिनियों के शारीरिक सौन्दर्य एवं भाषा के संदर्भों में जायसी ने अपनी निश्चित धारणा के माध्यम से सिंहलद्वीप को अभूतपूर्व–अकल्पनीय लोक के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया है, वैसा ही प्रयास वे श्रृंगारहाट के संदर्भ में भी करते हैं। सिंहल की वेश्याओं का सौन्दर्य अतीव उत्तेजक है। उनकी क्षमताएँ अपार हैं। वे सुखपूर्ण–समृद्ध जीवन जीती है। ऐसी वारांगनाओं की उपस्थिति से कवि आनंदित है। वह वेश्या–बाज़ार को साधुवाद का अधिकारी मानता है– उस देश की श्रृंगारहाट 'धन्य' है। स्पष्टतया कवि औरतों के बाज़ार के 'होने' का समर्थक है। देह–व्यापार सामाजिक इतिहासों का सत्य होते हुए भी व्यापक नैतिक संदर्भों में कभी भी स्वागत–योग्य नहीं समझा गया। 'सामान्य तौर' पर कोई भी स्त्री अपनी इच्छा से प्रसन्नतापूर्वक अपना शरीर नहीं बेचना चाहती। ऐसे में 'भक्तिकाल' के महाकवि का देह–व्यापार के बाज़ार की उपस्थिति पर मग्न हो जाना उसकी निजी नैतिकताओं एवं समझ का पूर्ण स्पष्ट संकेतक है। उनका वर्णन भी अलग तरह का है। वे वेश्याओं का अस्तित्व होने के कारणों पर विचार नहीं करते। इसमें व्यवस्थाओं एवं मानसिकताओं को खंगालना पड़ता। वे उन्हें परम प्रसन्न, समृद्ध, सुखी, चालबाज़–धूर्त के रूप में चित्रित करके अपनी संवेदना उनके ग्राहकों, मानेकि वेश्यागामी पुरुषों को देते हैं। कल्पना–लोक में यथार्थ की तथाकथित झीनी उपस्थितियों में प्रतिभासित क्रिया–व्यापार इतिहास–नगरों से अलग नहीं है।[9]

सिंहलदीप में पाखण्डी, धूर्त्त एवं तस्करों की उपस्थिति के संकेत विचारवाद प्रकाशक नहीं हैं।[10] इन्हें निरर्थक वक्तव्य अथवा अभिप्रेत व्यवस्था तथा चरित्र के समर्थक रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए। कवि ने उनकी उपस्थिति पर कोई सकारात्मक–नकारात्मक टिप्पणी नहीं की है। इस कल्पना लोक में दरिद्र भी है। वे अपने घरों में सुखी है।[11] कैसे सुखी है? रंक के हाथ 'घर' कैसे आ गया? रचनाकार ने यह नहीं बतलाया है। दिल्ली के कंगाल भी सुखी रहे होंगे। वहाँ तो स्वयं सुल्तान रात्रि में जोगी वेष में उनकी खोज–ख़बर लेता है।[12] अतएव इनकी उपस्थितियों को यथार्थ के चालू संकेत मानना चाहिए। इनसे किसी प्रकार का दृष्टि–बोध नहीं होता।

मेरी विनम्र राय में जायसी–काव्य की समीक्षा के दौरान रचनाकार के विचारवाद की अवहेलना की जाती रही है। इसी कारण से कभी तो इसमें सूफी प्रेम–पद्धति और कभी इतिहास के विषाद के दर्शन करने के प्रयास किए जाते रहे, जबकि वास्तव में पदमावत में ध्वनित विचार में ही सर्जक की भावना पल्लवित हुई है। इस दृष्टि से देखने पर ही इसकी कथा पूर्ण अखण्डित प्रतीत हो सकती है।

सिंहलद्वीप, चित्तौड़ और दिल्ली को अलग–अलग दृष्टियों से देखने पर प्रबंधकाव्य की कथा की एकतानता–एकसूत्रता–एकलयता को व्याघात पहुँचता है। ऐसा करने पर कम–से–कम दो भिन्न–भिन्न मूल्यवादी संसार उभरते दिख सकते हैं– एक, सिंहलद्वीप का और दूसरा, चित्तौड़ तथा दिल्ली का। लेकिन ऐसा है नहीं। गंधर्वसेन का सिंहलद्वीप महाकवि जायसी के विचारवाद की काल्पनिक परिणति है। रत्नसेन का चित्तौड़ और अलाउद्दीन की दिल्ली उक्त विचारवाद

का वास्तविक प्रतिफलन है। विशेषाधिकार प्राप्त समाजों का स्थान स्वाभाविक रूप से विशिष्ट होता है। ये समाज अपनी विशिष्टता को नैतिकताओं का रूप देकर शाश्वत सुरक्षित देखना चाहते हैं। यह कामना सिंहलद्वीप, चित्तौड़ और दिल्ली राज्यों को 'एक' कर देती है। इनके एकीकरण की योजना में जायसी का विशिष्ट विचार वाणी प्राप्त करता है, जो उनका इतिहास–बोध है।

सिंहलद्वीप की अद्वितीयता–सिद्धि के लिए आध्यात्मिकता का आश्रय लिया गया है। इसमें जीवन की सहज–स्वाभाविक गति अनुपस्थित है। यह रचनाकार का अभिप्रेत स्थिर समय है, एकांगी–एकार्थी स्वप्न है। इसमें कर्मजात संघर्ष नहीं दिखलाई पड़ता। इस कारण यह समग्रता में मनोरम है। यहाँ 'रंक' भी अपने 'घरों' में उसी प्रकार सुखी हैं, जैसे 'राव' अपने घरों में। साहित्य के संसार में वैयक्तिक अभावों में भाव भरने की प्रक्रिया में वैकल्पिक विश्व की कल्पना कवि करते रहे हैं। वे ऐसा करते समय अतिशयोक्ति अलंकार से सहायता लेते हैं। लेकिन जायसी की विशिष्टता यह है कि उन्होंने सिंहलद्वीप की कल्पना में सुंदर स्वप्नों की जो संकरी दुनियाँ निर्मित की है, वह उनके सर्वश्रेष्ठतावादी विचारवाद की उद्‌घोषिका बन कर उभरती है। इसमें जीवन के यथार्थ का स्पर्श केवलमात्र इसलिए होता है कि अध्येता इस आभास से मुक्त नहीं हो जाए कि विषय इसी पृथ्वी तथा उसके महामानवों से संबंधित है। इसका परिचय देते हुए कवि स्वर्ग की स्मृति कराता है।[13]

इस द्वीप में किसी तरह का कोई अभाव नहीं है। यहाँ सब–कुछ अनुपम है। अमराइयों, फुलवारियों से ले कर पुष्पों, फलों तक और पशुओं, पक्षियों से ले कर कुओं, बावड़ियों, ताल–तलैय्यों, कुण्डों, बाजारों आदि तक सब अद्वितीय–अनुपमेय है। कोई भी ज्ञात साधना–पद्धति ऐसी नहीं है, जिसके साधक यहाँ साधनारत नहीं हों। मानसरोवर का सौन्दर्य यहाँ देखते ही बनता है। यहाँ काल स्थिर है, इसलिए सरोवर की शोभा की स्मिति भी स्थिर–स्थायी है। आकारगत् विराटता एवं सशक्तता में इसकी तुलना अन्य किसी किले या गढ़ से नहीं की जा सकती। यह पाताल से चल कर भूमि से होते हुए आकाश से बातें करता है। वर्णन हतप्रभ करने में सक्षम है।[14]

अभावों के भावीकरण–रूप इस लोक में समस्त मनोवांछित वस्तुएँ बहुतायत से प्राप्त होती है। केवल वस्तुएँ ही नहीं, अपितु चिर अभीप्सित जीवन–अवस्थाएँ भी यहाँ उपलब्ध हैं। सब–कुछ जो सुन्दर है, वह यहाँ पराकाष्ठा पर पहुँच कर चिरंतनता में है। सुविधा में समझने की दृष्टि से कहा जा सकता है कि यह स्वर्ग का भूमीकरण है। मनुष्य जिन उपादानों के साथ जिस स्थिति में जैसे स्थान पर रहने की कल्पना करता या कर सकता है, सिंहलद्वीप वह प्रदेश है। यहाँ व्याधि और वार्धक्य नहीं है। यहाँ स्वस्थ अजर–अमर शरीर पूर्ण निश्चित होकर सदैव भोगरत रहते हैं। संपन्नता–समृद्धि–वैभव का साम्राज्य है।[15]

स्पष्ट रूप से सिंहलद्वीप जीवन का कर्म–निरपेक्ष रंगीन स्वप्न है। वह केवल कल्पना के संसार में ही घटित होता है। उसकी ऊपरी तौर पर दृश्यमान् धवलता व्यावहारिक समीक्षा का विषय नहीं बन सकती क्योंकि उसके जीवनगत् सरोकार नहीं हैं। जब उसकी निरपेक्ष सर्वोत्तमता और निरंकुशता पर आघात होता है, तब उसकी प्रतिक्रियाओं के रूप में सर्वश्रेष्ठ–विशेषाधिकार प्राप्त–सुविधाभोगी वर्ग मुखर होता है। ऐसे अवसरों पर इसकी तथाकथित उज्ज्वलता के पीछे का वास्तविक चेहरा दिखलाई पड़ता है, यद्यपि जायसी अपने अद्‌भुत कला–कौशल से उसे छिपाने में समर्थ दिखाई देते हैं। इसी प्रकरण में ऐसे अवसरों की सार्थक चर्चा करने का प्रयत्न किया जाएगा।

अभावों का सगुण बोध भावों के निराकार विश्व का निर्माता होता है। जब औसत मनुष्य अपनी निश्चित सीमाओं में कल्पना–क्षमता एवं पौराणिक स्मृतियों के बल पर सपनीली दुनिया में जा कर कुछ समय निजी अभावों से मुक्ति पाने में सक्षम है, तब जायसी सदृश महाकवि द्वारा एक पूरा समानान्तर संसार गढ़ देना नितांत संभव था। यह समानांतर संसार पाठकों का परिचित लोक है। जीवन–तर्क अनेकानेक बार, पुनः–पुनः हाशिए में जाता है। ऐसे में सिंहलद्वीप बार–बार जीवित होता है। चित्तौड़ गढ़ का चरम–परम वैभव सिंहलगढ़ की पुनरुक्ति है। यहाँ भी सब–कुछ अद्वितीय है। पूरे के पूरे छियालिसवें ''चित्तौड़–गढ़–वर्णन खण्ड'' में इस गढ़ को अप्रतिम सिद्ध किया गया है। यह बिन्दु ध्यान रखने का है कि चित्तौड़ से परिचय का काल संघर्ष का है, इतिहास के तथ्य का है। स्वाभाविक रूप से इसमें चिरन्तनता–बोध पैदा नहीं किया जा सकता था। सिंहलद्वीप की शाश्वतता कर्मशून्य–अस्तित्वहीन समय की समयहीनता है। वहाँ स्वर्णकाल स्थिर है। वह सर्वोत्तमतावादी विचारवाद है। चित्तौड़ के वर्णन में कवि स्वर्गीय स्थिर समय की सूचना अतीव झीने रूप में ही दे सकते थे–

> साहि जबहि गढ़ देखा कहा देखि कै साजु।
> कहिअ राज फुर ताकर सरग करै जो राजु।।[16]

जहाँ इतिहास पूर्ण प्रामाणिक रूप में उपलब्ध हो, वहाँ कल्पनाएँ नितांत सीमित सीमा तक ही खेल सकती हैं। समयहीन समय के संदर्भ इतिहास–नगरों के वर्णनों में कारगर नहीं हो सकते। वहाँ अतुलनीय शक्ति एवं वैभव के अत्युक्तिपरक वर्णनों के द्वारा उसका झीना आभास मात्र कराया जा सकता है। चित्तौड़ के साथ–साथ दिल्ली के संक्षिप्त वर्णन में भी जायसी ने यही विधि अपनाई है। ''बादशाह अकेला संसार का भार संभालता था, उसी से समग्र संसार स्थिर था''– यहाँ अद्वितीयता–सिद्धि तथा समय की स्थिरता इस रूप में व्यक्त हुई है। ऐसे स्थलों पर शासक ब्रह्म का पर्याय प्रतीत होता है। संसार की स्थिरता में समय की स्थिरता दृग्गत होती है।[17]

प्रोफेसर विजयदेव नारायण साही की मान्यता है कि, ''सिद्धान्ततः सिंहल द्वीप शुद्ध अलोक है। दिल्ली शुद्ध इतिहास–लोक है और चित्तौड़ दो मुँहा है। एक मुँह सिंहल द्वीप की ओर है, दूसरा दिल्ली की ओर है। कथा की नायिका पद्‌मावती तीनों में लकीर की तरह खिंची हुई है।'' 'अलोक' का अर्थ ''आदर्श लोक'' नहीं है क्योंकि उसमें काला–सफेद सब–कुछ है। यह ''देश और काल'' के अर्थों की दृष्टि से 'अलोक' है, ''सतत वर्तमानता का लोक'' है। ''स्थिरीभूत कालहीन स्वतःसंपूर्ण गतिमयता'' के इस लोक में ''विलक्षण समरसता'' के दर्शन करते हुए साही जी ने निर्णय दिया कि इसका ''काल–प्रवाह तात्विक और मानवीय मूल्यवत्ता का प्रवाह है जिसकी जड़ें हमारी आन्तरिकता में हैं।'' इस लोक में ''गहरी मूल्यवत्ता'' है, जिसे जायसी ने 'प्रेम' कहा।[18]

मेरी विनम्र राय में सिंहललोक निष्क्रिय या स्वप्निल अवस्था में ही स्थिर समय या सतत वर्तमानता या अखण्डित काल–प्रवाह का प्रदेश है। अनादि–अनंत 'काल' मूलभूत चरित्र में एक–अखण्ड–अविभाज्य है। अपनी सुविधा के लिए मनुष्य ने उसे भूत–वर्तमान–भविष्य में बाँटा। यह विभाजित समय 'मानवीय समय'' है, जो पलों, मिनिटों, घण्टों, दिनों, मासों, वर्षों से लेकर शताब्दियों–सहस्राब्दियों तक जाता है। इतिहास और शरीर 'मानवीय समय' से संबोधित है और अध्यात्म तथा चेतना अखण्डित समय से। शरीर और चेतना एक–दूसरे से अलग नहीं रह सकते। दोनों के एक–दूसरे से भिन्न दिशाओं में चलने पर विभीषिकाएँ होगी। इसलिए 'समय' अपने अविभाजित एवं विभाजित दोनों स्वरूपों में

सत्य हैं। तदनुसार इतिहास और अध्यात्म तथा शरीर और चेतना भी सत्य है। मानवीय जीवन की गति भी अनुभूत सत्य है। सिंहलद्वीप में जब–जब जीवन गतिशील होता है, तब–तब मानवीय समय अस्तित्ववान् हो उठता है। कर्महीन अवस्थाओं में अवश्य ही वहाँ शाश्वत स्वर्णकाल खिलखिलाता है, लेकिन ऐसा उल्लास निरर्थक है क्योंकि मूल्यगत् संघर्ष एवं चुनौतियों से निरपेक्ष होकर अस्तित्वहीन हुए समय की समीक्षा नहीं की जा सकती। अतएव सिंहलद्वीप के ऐसे 'समय' में जायसी के कालगति से संबंधित बोध के दर्शन करना समीचीन नहीं प्रतीत होता।

मैंने काल की मूलभूत अखण्डता की सर्वप्रचलित मान्यता का उल्लेख किया है। समय की एकता–अविभाज्यता तार्किक आध्यात्मिकता से संस्पर्शित है। भर्तृहरि ने इस ओर संकेत करते हुए 'सत्य' को वाणी दी– ''काला न यातो वयमेव याता'' (काल नहीं बीतता, हम मनुष्य बीतते हैं।)[19] उनका संकेत मानवीय जीवन के क्षण–प्रति–क्षण व्यतीतात्मक चरित्र की ओर है। समग्र ब्रह्माण्ड की समस्त जड़–चेतन रचनाएँ प्रकृत्या लयोन्मुखी हैं। इसलिए प्राकृतिक अथवा मानवीय समय भी स्वभावतया परिवर्तनशील है। जीवन की विविध अवस्थाओं के रूपों में इस परिवर्तन को स्पष्टतया लक्षित किया जा सकता है। जन्म के उपरांत क्रमशः शैशव, कैशोर्य, यौवन, प्रौढ़, वार्धक्य तथा मृत्यु आती है। ये मानवीय समय की विविध भंगिमाएँ हैं। मनुष्य के जीवन का समय अस्थिर है। वह समरस नहीं है। समरसता एक दुर्लभ बल्कि अलभ्य आध्यात्मिक लक्ष्य है। इसीलिए मानवीय समूहों का जीवन भी सदैव गतिमान रहता है। इसी कारणवश समय की आधारभूत अखण्डता का सत्य व्यावहारिक अर्थों में मानवीय समाजों के न्यूनतम् अधिकारों तथा बुनियादी आवश्यकताओं और उनसे जुड़े अनिवार्य संघर्षों से जुड़ा हुआ है। उसे निरपेक्ष रूप में व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। न्यूनतम् अधिकारों और बुनियादी ज़रूरतों के पूरा होने के उपरान्त भी चिर चंचल मानवीय प्रवृत्तियाँ स्थिर या जड़ या मौन नहीं हो जातीं। जिस प्रकार से विस्तारोन्मुखता समय की प्रवृत्ति है, उसी प्रकार मनुष्य एवं उसके समाजों की भी। इसी कारण गति समय तथा जीवन का धर्म है। सिंहलद्वीप में जीवन के गतिशील होते ही उससे सापेक्ष काल भी गति पकड़ता है। 'दो मुँहा' लोक चित्तौड़ में ''आठ बरिस गढ़ छेंका अहा''[20] में भीषण संघर्ष के ऐतिहासिक–मानवीय समय के व्यतीत होने की सूचना है। ऐसी स्पष्ट सूचनाएँ सिंहलद्वीप में भी यथास्थान प्राप्य हैं। पद्मावती के जन्म से ले कर विवाह–योग्य अवस्था प्राप्त करने तक की प्रत्येक अवस्था में वर्ष, मास, दिन से लेकर घड़ी और क्षण तक का पूरा–पूरा विचार किया गया है। जीवन के अस्तित्व में आने के साथ ही कोई भी तिथि अन्य किसी तिथि जैसी नहीं रह जाती। अंधविश्वासों–रूढ़ियों–संस्कारों के अनुसाार ठीक वैसी भविष्यवाणियाँ मुखर होने लगती हैं, जैसी चित्तौड़ में रत्नसेन के भावी जीवन को लेकर हुई थी।[21]

स्पष्ट है कि सिंहलद्वीप में भी भविष्य को लेकर मानवीय चेतना में प्रवृत्या अंतर्निहित 'भय' उत्तम घड़ियों का विचार करता है और सौन्दर्य–संदर्भों में पूर्णिमा तथा अमावस्था विषय–सूची का अंश बन जाते हैं। राशियों की उत्तमता मानेकि समय के चरित्र पर चर्चा होने लगती है। प्रत्येक पदार्थ का अस्तित्व एक सीमित समय तक के लिए होता है। मनुष्य का जीवन भी सीमित है। वह निरंतर घटता भी रहता है। यही स्थिति फलों–फूलों–ऋतुओं के साथ भी है। इसलिए षड्ऋतुओं में फलते–फूलते सघन आम्रकुञ्ज और ऋतुराज वसंत की निरन्तर उपस्थिति मनुष्य की वह सहज कोमल इच्छान्वित अनुभूति है जिससे प्रेरित हो कर वह सामान्य तौर पर आत्मा की अमरता के दर्शन और संतान तथा विशेष तौर पर विभिन्न प्रकार के कृतियों के माध्यम से देहांत के अनंतर भी जीवित रहना चाहता है। ''एक देवस कौनिउँ तिथि आई''[22] अथवा ''आइ साहि अँबराँऊ जो लाए, फरे झरे पै गढ़ नहिं पाए''[23] में झंकृत अर्थों को मनुष्य के मनोविज्ञान की छाया तले ही विश्लेषित किया जा सकता है। स्वर्णकाल या जीवन या यौवन या वसंत आदि कल्पना में ही शाश्वत प्रतीत हो सकते हैं।

कर्मशील समय में जायसी द्वारा निरूपित तीनों राज्य व्यवस्थाओं का चरित्र संपूर्णतया समान है। सिंहलद्वीप, चित्तौड़ औद दिल्ली के शासक निरंकुशता एवं नृशंसता में एक जैसे हैं। महाकवि के मनोवांछित–संभवतः समानांतर संसार में सीधे–सीधे मृत्युदण्ड का निर्णय लेना एक साधारण घटना है। इससे सिंहलद्वीप का आंतरिक चरित्र उद्घाटित होता है। विद्वान–पण्डित हीरामन ने चंद्रमा या पद्मावती के समक्ष सूर्य अथवा उपयुक्त पुरुष अर्थात् कामभाव से संबंधित चर्चा की क्योंकि श्रोता की इसमें किशोर आयुसुलभ सहज रुचि थी। श्री वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार, ''चन्द्रमा जहाँ उगा है, वहाँ सूर्य का प्रताप सुनाने से चन्द्रमा की ज्योति मलिन होगी, यही राजा की समझ में सुग्गे का दोष था।''[24] जो हो, इस साधारण–सी बात पर सिंहलद्वीप का नरेश क्रोधोन्मत्त हो उठा। गंधर्वसेन ने हीरामन की हत्या करने की राजाज्ञा सुना दी। इस लोक की व्यवस्था अपनी आंतरिकता में बेहद निर्मम एवं पूर्ण निरंकुश है। यह सत्यनिष्ठ विद्वानों, गुरुओं, समर्पित मित्रों के प्रति भी असंवेदनशील है–

> राजै सुना दिस्टि भइ आना। बुधि जो देइ सँग सुआ सयाना।।
> भएउ रजायसु मारहु सुआ। सूर सुनाव चाँद जहँ उआ।।[25]

ठीक यही व्यवस्था–उद्घोषक मनोवृत्ति रत्नसेन–शूली प्रसंग में दिखलाई देती है। वहाँ भी 'जोगी' को सूली पर चढ़ाया जा रहा था। पद्मावती किसी 'प्रेमयोगी' को नहीं, ''कुलीन चौहान राजा'' को मिलती है।

गंधर्वसेन अपनी अपार सैन्य–शक्ति से उन्मादित है। आतंककारी सत्ता पर उसे अभिमान है। वह 'सर्वोत्तम' है।[26]

सिंहलद्वीप–अधिपति गंधर्वसेन द्वारा हीरामन और जोगी को दी गई मृत्युदण्ड की आज्ञा नृशंसता की दृष्टि से चित्तौड़–नरेश रत्नसेन द्वारा अपनी पत्नी नागमती को हीरामन सुए को जीवित उपस्थित करने अथवा उसके साथ जल मरने तथा दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन द्वारा निसर्ग की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी पद्मावती को हस्तगत् करने के लिए चित्तौड़ को ध्वस्त करने की प्रतिज्ञा से एकरूप–एकाकार है। वस्तुतः एवं तत्त्वतः यह सर्वोच्चताबोध से निःसृत बर्बरता है। पदमावत के समीक्षकों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया है।

जायसी ने समग्र विश्व को भयाक्रान्त करने वाली सेनाओं की अपार क्षमताओं के वर्णन अतीव उत्साह के साथ किए हैं। सैन्य–शक्ति में निहित सामर्थ्य सर्वोत्तमता तय करता है। वैभव, प्रताप और आतंक सहज मनुष्यता को हाशिए पर रख देते हैं। दिल्ली की भाँति सिंहलद्वीप का प्रथम परिचय भी आतंकित करता है। कवि ने असीम साम्राज्य, अद्वितीय–अजेय सैन्य–शक्ति तथा भयाक्रान्त करने की अपार क्षमता को महत्त्व का आधारभूत तत्त्व बना कर प्रस्तुत किया है।[27]

सिंहलद्वीप कल्पना लोक है। वहाँ वास्तव में सेना के प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती। समग्र संसार के राज्याध्यक्ष वहाँ पहले से ही मस्तक नवाए खड़े हैं। दिल्ली और चित्तौड़ इतिहास–नगर हैं।

संदर्भ

1. जायसी, विजयदेव नारायण साही, पृष्ठ 92
2. पदमावत, 49/2
3. वही, 50
4. वही, 32
5. वही, 25
6. वही, 84/6–7/8/2
7. वही, 461/39/5, 462/39/6
8. वही, 36/7
9. वही, 38
10. वही, 39/5 से 9
11. वही, 36/3
12. वही, 458
13. पदमावत, जायसी, 27
14. वही, 40
15. वही, 43, 44/4
16. वही, 553/8–9
17. वही, 457/1 से 5
18. जायसी, विजय देव नारायण साही, पृष्ठ 97 से 102
19. वैराग्यशतक, भर्तृहरि
20. पदमावत, जायसी, 532/1
21. वही, 73 / 3 से 9, 51/1, 4 से 6, 52/1 से 4, 6–7, 53/2, 54/1
22. वही, 59/1
23. वही, 532/2
24. पदमावत, सं. वासुदेवशरण अग्रवाल, पृष्ठ 65–66
25. पदमावत, जायसी, 56/1–2
26. वही, 265/3 से 7
27. वही, 26